लोकदेवत्व

लोकदेवता

लोकदेवता किसी भूभाग के लोक द्वारा पूजित देवता है । वह लोक द्वारा मान्य और प्रतिष्ठित होता है । उसके पीछे कोई विशिष्ट मत या सम्प्रदाय नहीं होता और न ही वह किसी सम्प्रदाय या विशिष्ट विचारधारा को खड़ा करता है । लेकिन इतना निश्चित है कि उसके संबंध में कोई-न-कोई ऐसी कथा या घटना प्रचलित रहती है, जो रहस्य या चमत्कारप्रधान होती है और जिससे एक रहस्यपूर्ण भय कीर भावना अथवा कुछ प्राप्त करने की लोभमयी छलना स्वतः जग जाती है । हर आदमी किसी-न-किसी अभाव से पीड़ित रहता है और उससे छुटकारा पाने की आशा में वह सभी तरह के प्रयत्न करता है । जब वह थककर हताश हो जाता है, तब देवता की शरण में जाता है और वहाँ कुछ न मिलने पर भी जो एक मानसिक तुष्टि प्राप्त होती है, वह देवता के वरदान या प्रसाद की तरह आनंद कीर सृष्टि करती है ।

वस्तुतः लोकदेवता लोक की किसी-न-किसी भावना का प्रतीक है और यह प्रतीक हर युग के लोकमन के अनुसार बदलता रहता है । लोक की रुचि निर्णायक भूमिका अदा करती है, लेकिन वह भी मानसिक जलवायु पर निर्भर करती है । लोकजीवन में उपयोगिता की कसौटी हर कालखंड में मान्य रही है । लोकदेवता के देवत्व की गरिमा का मापन उपयोगिता ही करती है । उपयोगी न होने पर उसका देवत्व घट जाता है और धीरे-धीरे उसकी मान्यता विलुप्त हो जाती है तथा उसकी जगह पर दूसरा देवता प्रतिष्ठित हो जाता है । इस तरह लोकदेवताओं का भी अपनाइ तिहास है । हर युग के लोकदेवताओं की जाँच-पड़ताल से लोकरुचि और लोकमानस का इतिहास उजागर हो जाता है ।

लोकमानस बड़ा विचित्र है । वह अच्छों-अच्छों की परवाह नहीं करता । बहुत ऊँचाई पर खड़े, लोक की पहुँच से बाहर होते हैं, इसलिए वे देवता नहीं बन पाते । देवता वही हो पाते हैं, जो लोक के अपने हैं, लोकहित से जुड़े हैं और अपनी शक्ति एवं चमत्कार से लोक को प्रभावित करने में सक्षम हैं । लोक फल का लोभी होता है । उसके लिए वही देवता है, जो मनवांछित फल दे । चाहे वह फल व्यक्ति की अपनी कमाई हो, पर उसमें देवता की कृपा का भ्रम अवश्य रहता है । साथ ही किसी फल को देवता का मानने में व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी से बच जाता है । लोक की यह मानसिकता देवत्व जुटाने में सहायक होती है ।

वर्गीकरण

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

देवता कई तरह के होते हैं । डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने वेद और लोक की कोटियों के आधार पर वैदिक देवता और लोकदेवता के दो वर्ग बनाये हैं । उनके अनुसार वैदिक देवता टकसाली और पद-प्रतिष्ठा में बहुत ऊँचे हैं जबकि दूसरे `छुटभैये' देवता हैं, क्योंकि उनका संबंध आदिम जातियों से है अथवा उनकी परम्परा सामान्य लोक में है । एक सीमा तक तो श्री अग्रवाल कीर टिप्पणी अपना औचित्य रखती है, पर लोकदेवताओं और लोकदेवियों को `छुटभैये' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि वे लोक द्वारा स्वीकृत देवता हैं, जबकि वैदिक देवता एक विशिष्ट वर्ग या संप्रदाय द्वारा मान्यता प्राप्त होते हैं ।

लोकदेवताओं को निम्न वर्गों में रखा जा सकता है-

1. **प्रकृतिपरक देवता-**वृक्ष, भूमि, पर्वत, नदी, पवन, सूर्य, चंद्र आदि ।
2. **अनिष्टकारी देवता-अ**ग्नि, सर्प, भूत-प्रेत, आँधी, मृत्यु आदि ।
3. **आदिवासियों के देवता-ब**ड़ा देव, ठाकुरदेव, नारायन देव, घमसेन देव आदि ।
4. **स्थलपरक देवता-**गाँव की देवी, खेरमाई, मिड़ोइया (खेत की मेड़ के देवता), घटोइया (घाट के देवता), पौंरिया बाबा आदि ।
5. **जातिपरक देवता-**कारसदेव, ग्वालबाबा और गुरैयादेव (अहीरों के), मसानबाबा (तेलियों के), भियाराने (काछियों के), गौंड़बाबा आदि ।
6. **अतिप्राकृत देवता-य**क्ष, गाधर्व, भूत, राक्षस या दानव, नाग आदि ।
7. **स्वास्थ्यपरक देवता-**शीतलामाता, मरईमाता, गंगामाई आदि ।
8. **अर्थ या समृद्धि**-परक देवता-मणिभद्र, कुबेर, लक्ष्मी, नाग आदि ।
9. **विवाहपरक देवता-**दूलादेव, हरदौल, पार्वती या गौरी, गणेश आदि ।
10. **शक्तिपरक देवता-**शिव, दुर्गा, काली, हनुमान, चंडिका, भैरोंदेव आदि ।
11. **वरदायी देवता-**शिव, इन्द्र, वासुदेव, राम, शारदामाई, दशारानी आदि ।
12. **कुलदेवता-**गोसाईं बाबू, सप्तमातृकाएँ, खुरदेवबाबा आदि ।
13. **संतानरक्षक देवता-र**क्कस बाबा, बीजासेन, षष्ठी देवी, बेइया माता आदि ।
14. **विध्नहरण देवता-**गणेश, पितृदेव, संकटा देवी आदि ।

प्रागौतिहासिक लोकदेव

बुंदेलखंड के आदिवासी पुलिंद, निषाद, शबर और गोंड़ ही लोकपूजा में प्रमख रहे हैं । प्रारंभ में प्रकृतिपरक लोकदेव ही प्रधान रहे हैं, क्योंकि नग्न वन्यजातियों में फल देने वाले वृक्ष, जल देने वाली नदी और प्रकाश देने वाले सूर्य-चन्द्र उपयोगी सिद्ध हुए । फिर अनिष्टकारी देवों की पूजा शुरू हुई, ताकि सर्प, आँधी और मृत्यु से रक्षा हो सके । उसके बाद अन्य देवों का उदय हुआ । आदिवासियों ने

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

अपना प्रमुख देवता `बड़ा या बड़का देव' माना है, जो आगे जाकर `महादेव' या `शिव' हो गया है । इस अंचल के हर गाँव में `ठाकुर देव' के चबूतरे थे । `गाँव-गाँव कौ ठाकुर' पंक्ति बहुप्रचलित रही है, जिससे ज्ञात होता है कि गोंड़ देवताओं का प्रभाव जनपदीय देवों पर इतना था कि उनके अवशेष आज भी मिलते हैं । `ठाकुर' गोंड़ों का ग्रामदेवता था, जो धीरे-धीरे सबका हो गया है । उनका स्थान गाँव के बाहर वृक्ष के नीचे रहता है और उनके प्रतीकस्वरूप वृक्ष पर श्वेत धुजा लगा दी जाती है । गाँव को आपत्तियों से बचाना और उसकी रक्षा करना इन देवता की जिम्मेदारी है ।

गोंड़ों के देव हैं-नरायन देव, घमसेन देव, नागेश्वर देव, दूल्हादेव और खूँटा देव तथा देवियाँ हैं-खेरमाई, वनजारिन माई, गंगाइन माई, शारदा भाई और शीतला माई । चेचक की देवी हैं-बुढ़ी माई और कसलाई माई तथा हैजा एवं प्लेग की देवी हैं-मरई माता । आज भी इस जनपद में दूला देव, खूँटा देव, खेरमाई, गंगामाई, शारदा माई, शीतला माई, मरई माता लोकप्रचलित हैं । अंतर इतना है कि दूला देव-१ रसोई का देवता न होकर विवाह का हो गया है, शीतला चेचक की देवी हो गयी हैं । शबर भी दूल्हादेव और भवानी (देवी) की पूजा करते हैं । `कादम्बरी' में शबर-सेनापति को देवी चंडिका का भक्त बताया गया है । बूढ़ा देव की पूजा भी होती थी । आदिवासी अपने अनुभवों से पूजा का संधान करते-करते आज के बहुदेववाद के पुजारी बन गये हैं ।

गुहाचित्रों में एक देव का रेखाचित्र-सा मिला है, जिसे श्री वाकणकर ने पाशुपत बताया है । सिंधु घाटी के अवशेषों के साक्ष्यों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि उस समय पाशुपत जैसे किसी देव और एक देवी की पूजा होती थी ।इ तना निश्चित है कि गुफा-युग में ऐसे विचित्र मानवी चित्र मिले हैं, जो तत्कालीन देवत्व के प्रमाण-से प्रतीत होते हैं, लेकिन उनका नामकरण कठिन है । कृषि-युग में मातृपूजा को प्रधानता मिली । भूदेवी प्रमुख देवी बनीं, क्योंकि वे उपज देती थीं और लोक के लिए सबसे अधिक उपयोगी थीं । उनकी पूजा आज भी भुइयाँ रानी या भियाँरानी के रूप में होती है । काछियों (कछवारा करने वालों) में भियाँरानी ही पुरुष रूप में भियाँराने हो गये हैं । पशु से संबंधित देव भी इसी युग में स्थापित हुए थे, पर उनके नामरूपों का प्रमाण मिलना संभव नहीं है । संभव है कि खूँटा देव इसी समय के हों ।

रामायण-काल में वैदिक देवताओं का प्रवेश आर्यों की आश्रमी संस्कृति के प्रतिष्ठापक ऋषियों और मुनियों से हुआ था । विन्ध्यवासियों ने उनके प्रति श्रद्धा और प्रेम प्रदर्शित किया था, जबकि दक्षिण के राक्षसों या उनकी संस्कृति से उनका घोर विरोध था । कौन से वैदिक देवता यहाँ आकर लोकदेवता बन गये, यह कहना कठिन है, परंतु यह निश्चित है कि दोनों तरह के देवताओं का सम्मिलन इस युग में हुआ था ।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

महाभारत-काल

महाभारत के आदि पर्व में छंद १७ से २७ तक के ११ छंदों में चेदिनरेश उपरिचर वसु द्वारा इन्द्र कीर पूजा और `इन्द्रमह' लोकोत्सव के आयोजन का उल्लेख है । इन्द्र ने प्रकट होकर उन्हें एक विमान, एक वरमाला और एक वैणवी यष्टि प्रदान की थी । वैणवी का अर्थ है बाँस की बनी हुई । बाँस की लाट का पूजन इन्द्र-पूजा का प्रतीक था । उसी के साथ शिव और यक्ष देवों की पूजा भी लोकप्रचलित थी ।इ स प्रकार वैदिक देवता इन्द्र को इस युग में अधिक महत्त्व मिला । इस समय यादवों द्वारा विकसित लोकसंस्कृति का फैलाव हुआ । चेदिनरेश शिशुपाल बहुत ही दबंग राजा था, उसमें वासुदेव कृष्ण को चुनौती देने का अदम्य साहस था ।इ धर कृष्म ने इन्द्र के स्थान पर गिरि की पूजा-२ प्रारम्भ करा दी थी । गोवर्द्धन का विरुद भी उन्हें मिला था, क्योंकि उन्होंने गोमाता के पूजन को भी लोकमान्य बना दिया था । इन्द्र आँधी-तूफान-बिजली-वर्षा के देव होकर लोकस्वीकृत हुए थे, लेकिन जब लोक ने उन्हें अमान्य कर दिया, तब वे श्क्ति के प्रतीक-रूप में प्रभावशाली बने थे ।

यक्ष-काल

इन्द्र अतिकाय और शक्तिशाली ते, लेकिन यक्ष भी विराट् काया और अपार शक्ति के स्वामी थे । इसलिए इस अंचल ने यक्षदेव को ही प्रधान माना । दूसरे, यक्ष भौतिक समृद्धि प्रदान करने और अमरत्व का मंत्र देने में सबसे आगे थे । इन्द्र उनकी तुलना में नहीं ठहर सका । असल में, यक्ष धरतीपुत्रों से जुड़े थे, जबकि इन्द्र आकाशी देव थे ।

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि यक्ष निषाद भाषा के शब्द की संस्कृत में अनुकृति है । बुंदेलखंड में निषाद जातियों का ही निवास था, अतएव यक्ष की लोकप्रियता स्वयंसिद्ध है । भरहुत के शुंगकालीन स्तूप और पवायाँ प्राप्त नागकालीन यक्षमूर्तियों से प्रमाणित है कि यहाँ ईसा की पाँचवी शती तक यक्ष-पूजा प्रचलित रही । पवायाँ का मणिभद्र यक्ष की मूर्ति के पाद पर अंकित अनेक नाम यक्षों की सामूहिक उपासना के साक्षी हैं । महाभारत की युधिष्ठिर और यक्ष की प्रश्नोत्तरी शैली बुंदेली लोकगीतों में अवतरित हो गयी थी । चंदेलकाल में स्थापित मनियाँदेव का मन्दिर मणिभद्र यक्ष का ही मंदिर है, जिसका प्रमाण कवि हरिकेश के प्रबंध `जगतराज की दिग्विजय' में मिलता है-

१. तिहि समय ऐल विल पार्श्व मणि, दै चंदेल कहि हित सहित ।

मणि देव यक्ष रक्षक सुपुनि, धन कलाप प्रति नित्य नित ।। ५०० ।।

२. जब-ससि चंद्रब्रह्म उपजाये, यज्ञ समय धनपति तहँ आये ।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

पारस दै मणि देव यक्ष दै, अवनी पर दरसन प्रतक्ष दै ।। ६७३ ।।

दोनों उदाहरणों में मणिदेव यक्ष और पारस मणि का स्पष्ट उल्लेख है । पहले में प्रतिलिपिकार ने `पारस या पार्स' का `पार्श्व' कर दिया है, जो उचित नहीं है । पारस मणि की घटना लोकप्रचलित है, जिसका संबंध मणिदेव यक्ष से ही है, क्योंकि वे मणि के स्वामी हैं । मणिदेव का लाकप्रचलन में मनियाँदेव हो जाना सहज है । `आल्हा' गाथा में `मनियाँदेव महोबे क्यार' के द्वाराइ सी लेकदेवता की वन्दना की गयी है । लेकिन इतिहासकार श्री वी. ए. स्मिथ के मत का अनुसरण करते हुए सभीइ तिहासकारों ने उन्हें मनियाँदेवी (गोंड़ों की देवी) माना है और चंदेलों की कुलदेवी सिद्ध किया है । इसी आधार पर चंदेलों को `हिंदुआइज्ड गोंड' कह दिया गया है, जो सही नहीं है । `दिग्विजय' का रचना-काल १७२२-२३ ई. है, अतएव १८वीं शती के प्रथम चरण तक यक्ष का देवत्व मान्य था ।

महाकवि तुलसी ने विनयपत्रिका के १०८वें पद में `बीर' (यक्ष) की आराधना को भक्ति का एक साधन माना है । इस जनपद में एक प्रचलित उक्ति है-`गाँव-गाँव कौ ठाकुर गाँव-गाँव कौ बीर', जिसका अर्थ है कि हर गाँव में पहले गोंड़ों के ठाकुर देव थे और फिर बीर (यक्ष) बाद में प्रतिष्ठित हुए । बीर के चबूतरे हर गाँव में बनते थे । आज भी लोकप्रसिद्ध है कि पीपल के वृक्ष में बरमदेव रहते हैं । उन्हें बिरबरम्ह भी कहा जाता है । बरम्ह या ब्रह्म शब्द के कारण लोग उन्हें ब्राह्मण मानने लगे, जबकि वह यक्ष के लिए प्रयुक्त होता था । ब्रह्ममह यक्षों के उत्सव के लिए प्रयुक्त होता था । यक्ष का पर्याय ब्रह्म ही था । मतलब यह है कि यक्ष का देवत्व १९वीं शती तक किसी-न-किसी रूप में बना रहा । यह बात अलग है कि यक्षों का उत्कर्ष ५वीं शती तक ही रहा है, उसके बाद उनका स्थान शिव ने सँभाला ।

यक्ष देव की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो उन्हें लोकप्रिय बनाने में सफल हुई हैं । पहली बात तो यह है कि यक्ष का रूप सुन्दर और अद्‌भुत होता है । यक्षिणी तो सौन्दर्य में अतुलनीय होती है । यक्ष की काया सुडौल और पुष्ट तथा शक्तिशाली होती है । यक्ष के विशेषणों के रूप में राजा, महत् और महाराज प्रयुक्त हुए हैं, जिनसे यक्षों की श्रेष्ठता प्रतिपादित होती है । यक्ष का पर्याय ब्रह्म उन्हें बहुत ऊँचाई पर खड़ा कर देता है । यक्षों का निवास ब्रह्मपुर कहा जाता है । लोक का विश्वास है कि यक्षों के पास अमृत है और धन का कोष

भी ।-३ स्वास्थ्य और शक्ति की गवाह हैं-महाकाय यक्ष-प्रतिमाएँ । यही सब कुछ पाने के लिए यक्षपूजा प्रचलित हुई । गाँव-गाँव में यक्षों के चबूतरे बन गये । उन पर शंकुनुमा मिट्‌टी की यूही खड़ी कर दी जाती है, जिसका अवशेष आज भी अखाड़े की पट्‌टी में बच रहा है और जिसे पहलवान कुश्ती शुरू होने के पहले मिट्‌टी चढ़ाकर पूजते हैं । यक्ष-पूजा में पत्र-पुष्प, हल्दी-अक्षत्, दीप-गंध, प्रसाद और लोकगीत ही प्रमुख उपकरण हैं, जिनसे लोक की पूजा-पद्धति प्रारंभ हुई है और जो वैदिक पद्धति के प्रमुख सूत्रधार सिद्ध हुए हैं । प्रसाद के रूप में रोट का चूरना इस अंचल की अपनी विशेषता है ।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

शिव-काल

शिव एक विकसनशील लोकदेव रहे हैं । पहले वे लोकदेव थे, बाद में वैदिक देवता के रूप में प्रतिष्ठा पा गये और त्रिदेव में उनकी गणना होने लगी, लेकिन फिर लोक के देवता की तरह पूजित हुए ।इ स अंचल में पहली शती से तेरहवीं शती तक उनकी तूती बोलती रही । शिव का निर्माण और विकास शबर, किरात, निषाद, द्रविड़ तथा आर्य विश्वासों से हुआ है । इस अंचल में शबर, किरात और निषाद आदिम जातियाँ थीं, जिन्होंने शिव के भयंकर, संहारकारी और रौद्र रूप की कल्पना की थी । भैरों देव भी उन्हीं के पूरक थे । भूत-प्रेत, पिशाच-बैताल आदि उन्हीं से जुड़ गये थे । तंत्र-मंत्र भी उन्हीं जातियों की उपज थे । इस तरह यक्ष की तुलना में शिव का यह शक्तिशाली रूप अधिक मुखर हो गया था । किरातों ने उन्हें संगीत और नृत्य का देवता भी मान लिया था । वैदिक रुद्र देवता भी आकर अपने समकक्ष शिव से एक हो गये । इन्द्र और यक्ष पहले से ही उनके साथ समरस हो चुके थे । इस तरह शिव का एक बड़ा परिवार बन गया था । सबसे प्राचीन भूदेवी का विकास मातृदेवी और फिर अम्बिका में हुआ । आगे चलकर यही अम्बिका सती और पार्वती बनी ।

नाग-वाकाटक युग में शिव को राष्ट्रीय देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया । इतिहासकार श्री काशीप्रसाद जायसवाल ने `अंधकारयुगीन भारत' के पृष्ठ १०४ पर लिखा है कि (संहारकर्ता) भगवान् शिव अपने भक्तों (भारतीयों) को (शकों से) स्वतंत्र करने के लिए उठ खड़े हुए हैं । इस काल में शिव को संहारकर्ता और योद्धा मानने की परम्परा निषादों से ही आयी थी । वस्तुतः लोकदेवता शिव की इस व्यापक प्रतिष्ठा ने एक महत्त्वपूर्ण जागृति ला दी थी, जिसके फलस्वरूप हर गाँव में शिव की पिंडी या बटैया पूजित होने लगी । शिव के साथ विष्णु सूर्य आदि की पूजा होने लगी । साथ ही वृषभ, चन्द्र, गाय, नाग-४ आदि की महत्ता भी बढ़ी । गंगा को एक अलग स्थान मिला ।

गुप्तकाल में विष्णु का प्रभाव बढ़ा, पर शिव का घटा नहीं । त्रिदेव में ब्रह्मा और विष्णु के साथ शिव की जोड़ी बन गयी । वे वैदिक कोटि में मान्य हुए, पर उन्होंने लोक को नहीं छोड़ा । शैव सम्प्रदायों ने उन्हें जगत् का निर्माता-नियामक के ऊँचे आसन पर बैठा दिया, पर उन्होंने अपने लोक-रूप को हमेशा सुरक्षित रखा । वे निम्नकोटि की जातियों और अनार्यों को उतने ही प्रिय थे, जितने उच्च वर्गों को । पौराणिक युग में शिव-पुराण जैसे ग्रंथ ने उतना ही सम्मान पाया था जितना कि विष्णु-पुराण ने । लोकधर्म तो सम्प्रदायमुक्त होता है, अतएव एक समन्वयकारी स्थिति का पूरा-पूरा सम्भार मौजूद था, जिसका प्रतिफल थीं-हरिहर और त्रिदेव की मूर्तियाँ । विष्णु के साथ लक्ष्मी भी पूजित होने लगी थीं ।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

पौराणिक युग

वैसे तो गुप्त-काल में ही पुराणों कार लेखन प्रारम्भ हो गया था, लेकिन इस युग की सीमा ५वीं शती से १०वीं शती तक मानना उचित है । पुराणों में वैदिक देवताओं की ही प्रधानता है । कहीं-कहीं लोकदेवों को भी महत्त्व मिला है । इन ग्रंथों की विशेषता यह है कि उन्होंने विभिन्न कथाओं के द्वारा एक देवता को लोकदव बनाने का महत्कार्य किया है । दूसरे, ये कथाएँ विभिन्न देवों के बीच समन्वय स्थापित करने की प्रमुख साधन हैं । तीसरे, उन कथाओं की मुद्रा और शैली लोककथाओं जैसी है, अतएव लोक ने उन्हें अपना लिया है । उनकी वजह से कई वैदिक देवता सहजतः लोकदेव हो गये हैं । उदयगिरि (विदिशा) और देवगढ़ (ललितपुर) के गुप्तकालीन मंदिरों में विष्णु और वासुदेव की पुराण समर्थित लीलाओं को उत्कीर्ण किया गया है । पुराणों में प्रमुख देवों से संबद्ध लोकदेवों का उल्लेख भी मिलता है ।

हर्ष-काल में शिव ही प्रमुख लोकदेव बने रहे । उनका विकास दो दिशाओं में हुआ । एक तो रौद्र-शक्ति के रूप में, जिसकी प्रतिनिधि दुर्गा, काली और चण्डिका थीं । बाणभट्ट की `कादम्बरी' में शबरपूजित चण्डिका का वर्णन किया गया है । उन्हे रुधिर-बलि चढ़ायी जाती थी । दुर्गा की उपासना भी होती थी । कवि ने मातृभवनों में स्थापित मादृदेवियों और विशेष रूप में अम्बा देवी की पूजा का उल्लेख किया है ।-५ भैरों भी इसीलिए शिव के साथ लगे रहे । दूसरी दिशा थी-यागसाधना की, जिसके फलस्वरूप शिव सबसे बड़े योगी बने और नाथपंथ के अनुयायियों ने योग को केन्द्रबिन्दु बनाकर एक अलग परम्परा खड़ी कर दी । महोबा का गुहा पर्वत गुखार या गोखागिरि गुरु गोरखनाथ की साधनाभूमि बना । चंदेल-काल में युग-वीर आल्हा ने युद्ध की वीभत्सता और हिंसा से प्रभावित होकर नाथपंथ की ही शरण ली थी । `आल्हा' गाथा में वर्णित `कदली बन' उसकी साधनाभूमि का प्रतीक है और `अमर होना' उसके गंतव्य का ।

`कादम्बरी में सूतिका गृह के वर्णन में बहुपुत्रिका-६ नामक देवी का अंकन द्वार पर, भगवती षष्ठी देवी-७ और कार्तिकेय-८ की मूर्तियाँ द्वार के दोनों ओर तथा साथ में दोनों पार्श्वों पर सूर्य और चन्द्र की आकृतियाँ-९ बनाई गयी थीं । सूतिका गृह के भीतर पलंग के सिरहाने आर्यवृद्धा की मूर्ति स्थापित की गयी थी । इस अंचल में सूर्य, चन्द्र और स्वस्तिक की आकृतियाँ तो हमेशा बनती हैं । जच्चा के पलंग के सिरहाने `बेइया' स्थापित की जाती है (सासो आबें बेइया धराबें) । इधर छतरपुर के आस-पास तेल का `हाँतौ' लगाया जाता है, जिसे `बेइया का हाँतौ' कहते हैं । वृद्धाआर्या-१० से ही बिहाई, बेइया अथवा बीमाता अथवा बैमाता बना है । वे शिशु का भाग्य लिखती हैं । उन्हीं से बच्चे के सुख-सौभाग्य की कामना फलवती होती है । बहुपुत्रिका लोकदेवी का प्रचलन अब अज्ञात-सा है । चौक में भित्ति पर जिस देवी का आलेखन रहता है, उसे इस क्षेत्र में `जोति' या `ज्योति' लिखना कहते हैं । ज्योति का अर्थ है-प्रकाश । वैसे बुंदेली में `जोति' न कहकर `जोत' ही कहा जाता है और `जोत' जोत या जोति, दोनों से बन सकता है । जोत का अर्थ `रस्सी' या रस्सी जैसी लम्बाई है । भैयादूज

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

के दिन `आसजोत' जोरी जाती है, जिसका आशय यह है कि बहिन और भाई की आशा या सहारा की जोत (रस्सी या बंधन) जोड़ी जाती या लम्बी बनायी जाती है । अतएव जोत या जोति लिखना से तपत्पर्य या तो बच्चे की जीवन-जोरिया (रस्सी) की रक्षक देवी से है या प्रकाशरूपी ज्ञान देनेवाली से । इस प्रकार सूर्य, चन्द्र और दो लोकदेवियों की विद्यमानता स्पष्ट है । लक्ष्मी का प्रवेश यहाँ शुंगकाल (१८५ ई. पू. से ७२ ई. पू.) में हुआ, गुप्त-काल में उनकी मान्यता बढ़ी और हर्षकाल में वे राजलक्ष्मी बन कगयीं । लक्ष्मी को भौतिक समृद्धि और धन का प्रतिक भी माना जाने लगा ।इ स तरह लक्ष्मी कई तरह के प्रतीकों से जुड़कर लोकदेवी की योग्यता रखने लगी थीं । पुराणों ने उन्हें लोक के और भी निकट ला दिया था ।

चंदेल-काल

आल्हखंड या आल्हा गाथाओं, कारसदेव की गोटों, कजरियन के राछरों, गहनई आदि में लोकदेवों के उल्लेख किये गए हैं । आल्हा की हर गाथा का प्रारम्भ स्थानीय देवियों और देवताओं से होता है और आज उनकी सूची कुछ बड़ी हो गयी है । अल्हैत जहाँ आल्हा गाता है, वहाँ के लोकदेवों को भी सम्मिलित कर लेता है । तत्कालीन देवों में मनियाँदेव, चण्डिका देवी, भैरवबाबा, मैहर की शारदा देवी आदि प्रमुख रहे हैं । कारसदेव की गोटों में कारसदेव को शंकर का अवतार माना गया है, जिससे महादेव शंकर की महत्ता सिद्ध होती है । `गहनई' नामक लोकगाथा में `कन्हैया' तो ग्वाल मात्र हैं, लेकिन `पिपरी के भैरमा' (पीपल या पिपली ग्राम के भैरव) प्रमुख लोकदेव हैं । इन सबसे स्पष्ट है किइ स युग में महादेव शिव ही थे और उनका भैरव एवं चण्डिका आदि का संहारकारी रूप ही तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप होने के कारण अधिक लोकप्रिय हुआ । महोबा के मनियाँदेव मणिभद्र यक्ष थे, जैसाकि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है । यक्ष और शिव का देवयुग्म दीर्घकाल तक चलता रहा-११ एक तरफ शिव के साथ गौरा (पार्वती), कार्तिकेय, गणेश, गंगा, चन्द्र, नाग, भूत, पिशाच आदि का पूरा परिवार था; तो दूसरी तरफ विष्णु, लक्ष्मी, सूर्य, भुवदेवी आदि देव थे । खजुराहो के मंदिरों में अनेक लोकदेव उत्कीर्ण किये गये थे । मुरारिकृष्ण-१२ की खोजइ तिहासकार श्री केशवचन्द्र मिश्र ने की है, वैसे उनका लोकत्व बाद में प्रसरित हुआ ।

शाक्त मतों के प्रसार से जहाँ शिव के साथ `शक्ति' और `अर्धनारीश्वर' का विकास हुआ, वहाँ अनेक प्रकार की देवियाँ, योगनियाँ और यक्षणियाँ प्रकट हुईं । अघोरी, औघड़ बाबा, कनफटा, नाथ बाबा जैसे स्थानीय देवता मान्य हो गये । देवियों के स्थानीय विग्रहइ सी युग में बने । आसमाता, शीतलामाता, नवमी माता, लक्ष्मी, दुर्गा आदि आवश्यकतानुसार उदित हो

गयीं । प्रकृतिपरक देवत्व भी तरंगायित हो उठा । चंदेलों की समृद्धि का आधार कृषि था, इसीलिए ते

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

उन्होंने इस ऊबड़-खाबड़ अंचल को सरोवरों से पूरित कर दिया था । कृषिकेन्द्रित पूजा इसी समय महत्त्वपूर्ण बनी । उदाहरण के लिए, चंदेल-चौहानों के युद्ध-वर्णन में कजरियाँ या भुजरियाँ खोंटने की घटना लोकप्रसिद्ध है । कहा जाता है कि रक्षाबंधन के पहले चौहान सेना ने महोबा के दुर्ग को घेर लिया था और चंदेलनरेश परमर्दिदेव (परमाल) की पुत्री चंद्रावलि को कजरियाँ खोंटना मुश्किल हो गया था । तभीऊ दल ने आकर कजरियाँ खुटवायी थीं । `आल्हा' गाथा में इस युद्ध को `कजरियों या भुजरियों की लड़ाई' कहा गया है । इस ऐतिहासिक घटना से स्पष्ट है कि सावन शुक्ल की तीज (हरयाली तीज), कजरी नवमी, गाजबीज आदि श्(भादों के माह में) में फसल के हरे-भरे होने का आनन्द और फसल की समृद्धि की देवी तथा फसल को नष्ट करने वाले ओले, गाज आदि पूजे जाते हैं । पहले में फसल अच्छी होने का उत्साह है, दूसरे में नवें बाई के नौ कोठा फसल से भरने की पूजा और तीसरे में अनिष्टकारी तत्त्वों से बचने के लिए उनकी पूजा की भावना है । गाय-बछड़े और हल की पूजा भादों और कातिक की द्वादशी तथा गंगा दशहरा भी उसी परिधि में आती है । बट और सूर्य की पूजा पहले से प्रचलित थी । वायु और जल तो आदिवासियों के समय से ही चले आए हैं ।

तोमर-काल

ग्वालियर के तोमरनरेशों के संस्कृति और कला के प्रति अत्यधिक प्रेम के कारण ग्वालियर सांस्कृतिक केन्द्र बना और उसने तत्कालीन युग-चेतना को अपने में आत्मसात् कर इस अंचल को जो समृद्धि प्रदान की, वह उस संक्रांति के युग में सार्थक सिद्ध हुई । १५वीं-१६वीं शती में भारतीय संस्कृति अपने में सिमटकर जहाँ एकता की शक्ति अर्जित कर रही थी, वहाँ व्यापक होकर विदेशी तत्त्वों को पचाने के लिए अपनी समन्वलयकारी पाचन-शक्ति बढ़ा रही थी । तत्कालीन लोकधर्म और लोकदेवत्व भी आवश्यकतानुसार बदला । कविवर विष्णुदास ने अपने प्रबंधों-`रामायणी कथा' और `महाभारत' (१८३५ ई.) में राम और कृष्ण को सर्वप्रथम लोक के सामने प्रस्तुत किया और उन्हें लोकदेवत्व की कलम से चित्रित कर अपने कवि-कर्म का निर्वाह किया । `छिताईचरित' में गणपति, सरस्वती, गंगा, विष्णु राम आदि के साथ शंकर को अधिक महत्त्व दिया गया है । उस युग को भी संहारकर्ता शंकर और कल्याणकारी शिव की जरूरत थी, अतएव उन्हें `देवों का देव' कहकर समादरित किया गया -

राजपाट लछमी जे असेसू । होइ सकल जो फुरइ महेसू ।।

निहचइ जीउ लीजइ मानी । शंकर आहि परम पद जानी ।। ७५७ ।।

मंत्री कहइ न जानहि भेउ । यह शंकर देवन्ह कौ देउ ।।

यह निद्रा तूँ छाँडि बहोरी । दीजइ कर्म आपने खोरी ।। ७५८ ।।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

इस समय शिव के साथ ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, सूर्य, इन्द्र आदि देवताओं कोर बिना किसी साम्प्रदायिक भावना के महत्त्व दिया गया । बैजू बावरा, तानसेन आदि के संगीतपरक पदों में अनेक देवों की समन्वयकारी अर्चना से एक ऐसा शक्तिपुंज खड़ा किया गया, जो आक्रमणकारी से टक्कर ले सके । इस प्रकार लोकदेवों में एकता और शक्ति के विधायन का कार्य कवियों और साहित्यकारों ने किया था ।

भक्ति-आंदोलन

एक लोकप्रसिद्ध उक्ति है-`भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाये रामानंद', जिसका आशय यह है कि भक्ति का मूल द्रविड़ों में है । यह सिद्ध हो चुका है कि मूर्तिपूजा और अवतार की कल्पना द्रविड़ों से, वृक्षपूजा और बलि कोलों से तथा तंत्र-मंत्र किरातों से आये हैं । इस जनपद में भक्ति को स्त्रोत गोंड़ों द्वारा प्रवाहित किया गया था । उनके बड़े देव महादेव के रूप में देवों के देव बन गये, ठाकुरदेव गाँव-भर के ठाकुर हो गये और खेरमाई-१३ गाँव-भर की देवी बन गयीं । वस्तुतः लोकदेवत्व किसी एक जनपद की जंजीरों में नहीं जकड़ा जा सकता । जिस तरह लोकसंस्कृति आंचलिक होते हुए भी कई लोकसंस्कृतियों केर समवायों (कल्चरल पैटर्न्स) से बनी है, उसी तरह लोकदेवत्व कई स्त्रोतों से आने वाली देवधाराओं का संगम रहा है । गोंड़ चंदा-सूरज, भूदेवी, अन्नदेवी, गंगामाई, शारदामाई, शीतलामाई, मरईमाता, रातमाई आदि की पूजा करते थे । यही देवत्व इस अंचल में कई वर्षों तक फिर छाया रहा । तात्पर्य यह है कि लोकभक्ति का प्रादुर्भाव यहाँ बहुत पहले हो चुका था ।

भक्ति-आंदोलन की लहर तोमर-काल में ही इस अंचल पर तरंगायित होने लगी थी । कविवर विष्णुदास के ग्रंथों-ठरामायणी कथा' और `महाभारत' में रामकृष्ण का सम्प्रदायमुक्त भक्ति की प्रतिष्ठा हुई है । आगे चलकर जब व्रज में भक्ति का स्वरूप अनेक सम्प्रदायों में अलग-अलग हो गया और उनका प्रचार-प्रसार राजनीतिक भक्ति तथा अन्य माध्यमों से होने लगा, तब बुंदेलखंड का प्रभावित होना स्वाभाविक था । ओरछानरेश मधुकर साहि जैसे भक्त नरेश पर एक तरफ मुगल बादशाह अकबर का और दूसरी तरफ गोस्वामी विट्ठल नाथ का दबाव पड़ा था, लेकिन वे किसी भी सम्प्रदाय से प्रतिबद्ध नहीं हुए । उन्होंने एक पद में अपनी स्वतंत्र भावना व्यक्त कर दी-`ओरछौ बिन्द्राबन सौ गाँव ।'

बुंदेलों के स्वतंत्र राज्यों अथवा मुगलों के आश्रित भूभागों से भक्ति के प्रसार में कोई अन्तर नहीं पड़ा । यह अवश्य है कि सम्प्रदायों ने राजाओं और सामन्तों का सहारा लिया, जबकि सम्प्रदायमुक्त लोक-भक्ति ने लोक को सर्वोपरि समझकर एक सहज मार्ग पकड़ा । लोक के लिए राम, कृष्ण, शिव, गणेश, लक्ष्मी आदि सभी पूज्य रहे, जिससे परस्पर टकराव नहीं हुआ । एक सामान्य व्यक्ति सबकी पूजा एक साथ कर सकता था । वैसे यह अंचल कृष्णपरक अधिक रहा, रामपरक कम । शिव तो सर्वोपरि थे । उनसे समझौता कर ही कोई आगे बढ़ सकता था । चंदेलों के समय शिव द्वारा कृष्ण को

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

मान्यता दी जा चुकी थी और उन्हें विष्णु का अवतार स्वीकारा गया था । अतएव कृष्णभक्ति की जड़े बहुत पहले ही गहराई तक जम चुकी थीं । रामभक्ति का प्रसार तुलसी की `रामचरितमानस' द्वारा हुआ । उसमें राम ने शिव की पूजा-अर्चा की थी । इस प्रकार कृष्ण और राम, दोनों लोकदेवता के रूप में मान्य बने रहे और आज भी उनकी लोकप्रियता कम नहीं है । यह बात अलग है कि कृष्ण-संबंधी लोकगीतों की संख्या अधिक है ।

देवी-संबंधी लोकगीतों से स्पष्ट है कि मध्ययुग में शक्ति की महत्ता बढ़ गयी थी । पुष्टि के लिए कुछ साक्ष्य प्रस्तुत हैं और उनसे कुछ समस्याएँ भी सुलझ जाती हैं । बुंदेलखंड में `माई के मायले' नामक लोकगीत शक्ति के उपासकों में प्रचलित हैं । निम्न पंक्तियों में गणोशजी को शक्ति का सहायक बताया गया है-

बड़े-बड़े पैर गनपत राजा सोहें, सकती माई के खम्मा बनहैं हो स्वामी,

बड़े-बड़े कान गनपत राजा सोहें, सकती माई के पंखा बनहैं हो स्वामी,

छोटे-छोटे नैनवा गनपत राजा सौहैं, सकती माई के दियला बनहैं हो स्वामी ।

मध्ययुग में भक्ति के दो रूप मिलते हैं-एक तो उसका वीर रसात्मक ओजमय रूप और दूसरा रसिक या माधुर्यपरक रूप । इस अंचल में भी विशुद्ध लोकभक्ति के साथ ये दोनों रूप विद्यमान थे । प्रथम रूप के नायक प्रमुखतः राम, हनुमान, दुर्गा जैसे लोकदेव रहे हैं, जबकि दूसरे रूप के कृष्ण, लाँगुरिया जैसे । लाँगुरिया या लँगुरा, देवी का परम भक्त है और उसी की कृपा से देवी प्रसन्न होती हैं । उसे खुश रखने से ही देवी का वरदान मिलता है ।इ सी कारण लोक ने उसे लोकदेवता मान लिया है, लेकिन वह ऐसा देवता है कि रसिक भक्ति की साधना ही पसंद करता है । रसिकता या माधुर्यभाव का प्रेमी लँगुरा मध्ययुगीन रसिकता की देन है । उसे संबोधित लोकगीत `लाँगुरिया' कहे जाते हैं और उनमें श्रृंगार की प्रधानता रहती है । रामरसिक और कृष्णमाधुर्योपासना के समानान्तर शिवशक्ति के मध्य मध्थकभाव से प्रेरित लाँगुरिया किसी अचानकता का परिणाम नहीं है, वरन् परम्परा का जाना-समझा अंग है ।

गाँव भर का एक लोकदेवता-वैदिक देवताओं की विशेषता यह है कि वे किसी एक गाँव के नहीं होते । लोकदेवता छोटे क्षेत्र में भी अनोखे ऐक्य का उदाहरण पेश करते हैं । गाँव भर का एक लोकदेवता होता है । भले ही वह नट बाबा या गोंड बाबा हो, अथवा कोई पीर हो । उसमें कोई भेदभाव नहीं होता । झाँसी जिले में चिरगाँव और मोंठ के बीच सड़क पर स्थापित नट बाबा की इतनी मान्यता है कि कई गाँवों के लोग उन्हें पूजते हैं । महाराज छत्रसाल के गाँव महेवा (जि. छतरपुर) में गोंड़ बाबा गाँव भर के देवता हैं । मध्ययुग की विषम परिस्थितियों में एकता की यह मिसाल युग-चेतना की साक्षी है । मध्ययुग की लोककथाओं में खेरमाता की पूजा के उल्लेख हैं । तुलसी ने ग्रामदेवी,

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

ग्रामदेवता और गाँव में स्थापित नागदेव की पूजा की स्पष्ट संकेत किया है-

पूजीं **गार्म देवि सुर नागा** । कहेउ बहोरि देन बलि भागा ।।

राम की माता कौशिल्या ने ग्रामदेवी-देवताओं की पूजा की और उनका मनौती मानी कि यथोचित बलि चढ़ाएँगी । लोकदेवता किसी-न-किसी समूह के देवता थे । कारसदेव गाय की रक्षा करने वाले देवता थे, इसलिए गूजर, अहीर आदि उनकी पूजा करते हैं । विशिष्ट समूह के देवता होने के बावजूद उनकी मान्यता गाँवभर करता है और उनके दरबार में हर जातिधर्म का व्यक्ति जाता है । कारसदेव की गोट की दो पंक्तियाँ देखें-

कै भये कनैया, कै कारस भये

जिननें गइयन की राखी लाज ।

लोकभक्ति की व्यापकता

मध्ययुग में लोकभक्ति या तो व्यक्तिधर्मी थी या समूहधर्मी । पहली में अपने पति, अपनी संतान, अपनी सम्पता, अपने कल्याण और अपनी मोक्ष का उद्देश्य था, जबकि दूसरी में अपने परिवार, वंश, जाति, वर्ग, गाँव और देश का व्यापक क्षेत्र था । गनगौर, बट, संतानसप्तमी, लक्ष्मी, मकर के सूर्य की पूजा तथा अनेक व्रत प्रथम कोटि के हैं और कुलदेवता, कारसदेव, खेरमाता तथा भुइयाँरानी की पूजा दूसरी कोटि के हैं । दोनों कोटियाँ लोकभक्ति की दो भुजाएँ हैं, जो अपने शरीर के लिए एक साथ काम करती हैं । दोनों में कोई भेद-भाव या अलगाव नहीं रहा ।

पूर्वमध्य युग

`महोबा रायसो' (१६वीं शती) में गणपति, गौर (पार्वती), इन्द्र और गंगा को महत्त्व मिला है, पर बनदेवी और बनदेवता, यक्ष माणिभद्र और कुबेर तथा विन्ध्यवासिनी देवी (बिंध देवी) लोकसंबद्ध हैं ।-१४ तुलसी ने राम-सीता, शिव-पार्वती और गणेश-शारदा को लोक में स्थापित करने का श्लाध्य प्रयास किया है । साथ ही वृक्ष, बनदेवी, बनदेव, तुलसी, पितृदेव, गंगा, यक्ष और कुलदेवता जैसे लोकदेवताओं को उनका यथोचित सम्मान दिया है ।-१५ वस्तुतः तुलसी ने लोक और वेद का समन्वय करते हुए एक व्यापक देवत्व का चित्र प्रस्तुत किया है । ओरछा के प्रसिद्ध भक्तकवि हरिराम व्यास (१६वीं शती) ने एक पद में `टेसू' की चर्चा की है । (भक्ति बिनु टेसू कौ सौ राज) । इस अंचल में

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

`नौरता' के साथ `टेसू' भी खेला जाता है । जिस प्रकार `सुअटा' दानव या दैत्य अथवा अदेवता का प्रतीक है, उसी प्रकार `टेसू' राज भी । दोनों का संबंध कन्याओं के अपहरण से है ।-१६ प्रकट है कि १६वीं शती में `सुअटा' और `टेसू'-दोनों प्रचलित थे और दोनों की पूजा की जाती थी ।

केशवकृत `रामचंद्रिका' (छंद १२/१७) में गरुड़, कुबेर, यम, राक्षस, इन्द्र, सूर्य और चन्द्र देवताओं को श्रीराम का दास माना गया है और इस तरह राम को देवाधिदेव सिद्ध किया गया है । इस छंद में तीन तरह के देवता कहे गये हैं-देवता, अदेवता और नृदेवता । इन तीनों का सही अर्थ समझकर ही लोकदेवत्व को परखा जा सकता है ।

देवता, अदेवता और नृदेवता

देवता वे हैं जो अपने देवत्व के कारण पूजित होते हैं, और अदेवता वे हैं जो अदेवत्व के कारण पूजा करा लेते हैं तथा नृदेवता वे हैं, जो नर होते हुए भी देवत्व को अर्जित कर पूजित होने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं । लोक में तीनों विद्यमान हैं । उदाहरण के लिए, गौरा, दुर्गा, सरसुती, हरसिद्धि आदि देवियाँ और शिव, राम, कृष्ण, हनुमान, बन, पर्वत, नाग, यक्ष आदि देव अपना विशिष्ट देवत्व रखते हैं । अदेवता के रूप में `सुअटा', टेसू जातहारिणी या बहुपुत्रिका अथवा अहोई आदि हैं, जो कन्या-अपहरण और नवजात शिशुओं को अपना शिकार बना लेने के बाद पूजे गये हैं । भाष्यकार नृदेवता का अर्थ राज से लेते हैं । नृ का अर्थ नर है और नृदेवता से आशय ऐसे नर या मनुष्य से है, जो देवत्व अर्जित कर चुके हों । इस अंचल में कारसदेव, अजैपाल, हरदौल, दूलादेव, मंगददेव अपने आदर्शों, त्याग और चमत्कार के कारण लोकदेवता के रूप में आज भी पूजे जाते हैं । इतना ही नहीं, सतीत्व की पूजा भी इस अंचल का लोकमूल्य रही है और उसके प्रतीक चबूतरे या मंदिर पूजित रहे हैं । इसी तरह अपने परिवार के मृतकों को पुरखा-परमेसुर के रूप में आज भी पूजा जाता है ।

उत्तरमध्य युग

इस युग में सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना हरदौल का लोकदेवता बनना है ।-१७ यद्यापि कारसदेव का लोकदेवत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से उससे पहले का ठहरता है, तथापि हरदौल की लोकप्रियता ने उसे आच्छादित कर लिया है । कारसदेव की `गोट' के अनुसार वे `शिव' के अवतार हैं । इसकी सत्यता विवादग्रस्त भी हो सकती है, परइ सका अर्थ यह है कि `शिव' जैसे देवता के उत्कर्ष के बाद ही कारसदेव का अवतरण हुआ था । हरदौल ओरछानरेश वीरसिंह देव के सुपुत्र थे और वे १७वीं शती में यानी कि औज से तीन-सौ वर्ष पहले भौजी-देवर के प्रेम का अनुपम उदाहरण रखते हुए अमर हो गये

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

। उनके पहले इस क्षेत्र में भौजी-देवर के संबंध हँसी और विनोद के थे, जिसे बदलने का श्रेय हरदौल के त्यागमय प्रेम को है । बहिन कुंजा की पुत्री के विवाह में पूरा-पूरा सहयोग देने के कारण लोक ने उन्हें देवता बना दिया । विवाह के पहले स्त्रियाँ उनकी पूजाकर उन्हें न्यौता देती हैं, ताकि विवाह निर्विघ्न हो जाय और उसमें कोई अभाव न महसूस हो ।

पूरे उत्तर भारत में हरदौल के चबूतरे या मढ़ियाँ बने हैं । दूला देव की मढ़िया भी अनेक गाँवों में हैं । या तो हरदौल का भनैजदामाद (भांजी कार पति) हरदौल के प्रेत का हाथ पकड़ने से मृत्यु को प्राप्त हो गया या कोई युवा वर विवाह को जाते समय चीते द्वारा मारा गया या बिजली गिरने से पत्थर का हो गया और वही दूलादेव बन गया । यह प्रमाण प्रेत की पूजा का ही संकेत करता है । मंगद या मंगतदेव चंदेरी राज्य के एक बुंदेला ठाकुर थे, जिन्होंने तालाब पर पड़ाव डाले मुगल बादशाह की सेना को अकेले ही पराजित कर दिया था और कजरियाँ सिराने के लिए बहिनों का मार्ग प्रशस्त करते हुए अपना बलिदान भी किया था ।-१८ इस साहसपूर्ण बलिदान के कारण ही वे लोकदेवता के रूप में पूजित हुए । एक धुरमंगद थे, छत्रसालकालीन पलेरा के जागीरदार, जिन्होंने १६७० ई. में फिदाई खाँ से युद्ध किया था और उसे पराजित कर खदेड़ दिया था । उस वीर की प्रशस्ति में कुछ छंद भी मिलते हैं ।-१९ किंतु ये धुरमंगद लोकदेवता नहीं बन सके, क्योंकि मुझे जो `मंगादागीत' मिला है, उसमें कजरियों का युद्ध ही वर्णित है । प्रकट है कि लोकदेवता किसी-न-किसी आदर्श अथवा लोकधर्म पर प्राण निछावर करनेवाला होता है ।

छतरपुर जिले के महेवा ग्राम के कवि गुमान त्रिपाठी के प्रबंध-`कृष्णचंद्रिका' (१७८१ ई.) में गीरबान, निर्जरा, सुपर्वान आदि देवों के उल्लेख हैं, पर उनके स्वरूप का पता नहीं है । `शत्रुजीत रायसा' में गौर, गिरीश और गणेश को प्रधान माना गया है । `पारीछत रायसा' और `बाघाट रासो' में बरम देव और सती को विशेष महत्त्व मिला है । पारिछत (जैतपुरनरेश, जिन्होंने १८४०-४२ ई. में अंग्रेजों से लोहा लिया था) से संबंधित लोकगीत में किले के द्वार पर मसान, भैंसासुर और हनुमान की स्थापना का उल्लेख है-

किले पार खाई खुदी, दोरें हते मसान

भैंसासुर छिड़ियाँ थपे, दरवाजे बिराजे हनुमान ।

मसान तेली का प्रेत कहा जाता है । वे किसी को तंग करने में कुशल होते हैं । भैंसासुर की पूजा कृषिकार्य प्रारंभ करते समय की जाती है, ताकि वे फसल को नष्ट होने से बचावें । भैंसा लड़ने में भी बड़ा हठी होता है और हनुमान तो वीरत्व के प्रतीक हैं ही । इस प्रकार किले के लिए तीनों की सार्थकता सिद्ध है । वैसे युद्ध की देवी चामुण्डा और चण्डिका हैं । महोबा के चारों द्वारों पर उनकी मूर्तियाँ इसलिए स्थापित हैं कि शत्रुओं से नगर की रक्षा हो सके । हनुमान की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करने का प्रचलन मध्ययुग का है । छतरपुर के उत्तरी द्वार के हनुमान फिरंगी-पछाड़ के नाम से प्रसिद्ध हैं,

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

क्योंकि उन्होंने फिरंगी (अंग्रेज) को पछाड़ दिया था ।

लोकदेवत्व की दो सीमाएँ

उत्तमध्य युग के लोकदेवताओं की खोज करते हुए एक प्रश्न बराबर उठ रहा है कि विलासिता और रसिकता के इस युग में नरदेवता की परंपरा का उत्कर्ष क्यों हुआ । इसका उत्तर गहराई से सोचने पर ही मिल पाता है कि मूल्यों के हास के समय आदर्श या मूल्य की प्रतिष्ठा देवत्व तक ले जाती है । इस उच्च सीमारेखा के बाद एक ऐसा छोर भी है, जहाँ जातिगत संकीर्णता देवत्व को नियंत्रित करने लगती है । हर जाति का एक अलग देवता स्थिर हो जाता है । तेलियों का मसान बाबा, अहीरों का गुरैया बाबा और कारसदेव, काछियों का भियाँराने आदि के उदाहरण रखे जा सकते हैं । लेकिन उन्हें अन्य जातियाँ भी पूजती हैं, भले ही पूजकों की संख्या बहुत ही कम हो । कुछ लोकदेवताओं के नाम जातिपरक बन गये, जैसै ग्वालबाबा, बुंदेला बाबा, गोंड़ बाबा, नट बाबा आदि । वे किसी ग्वाल, बुंदेला, गोंड़ और नट के प्रेत होते हैं । छतरपुर के घोषयाना मुहाल में मंगलसिंह और बुधसिंह के दो चबूतरे हैं, जो आज भी पूजे जाते हैं । वे लोगों के सिर आते हैं और पूजकों की मंसा पूरी करते हैं । जब उनकी जानकारी ली गयी, तब ज्ञात हुआ कि वे गठेवरा के युद्ध (बुंदेलखंड का महाभारत, १७८३ ई.) में मारे गये थे । गठेवरा यहाँ से चार-पाँच मील दूर है और गठेवरा के युद्ध में सवा लाख राजपूत मारे गये थे ।

कुलदेवताओं की खोज

कुलदेवों और कुलदेवियों का इतिहास भी खोज का विषय है । कुलदेवता वह देवी या देवता है, जिसकी पूजा कुल में बहुत प्राचीन काल से चली आती हो । कई संस्कारों में कुलदेवता का पूजन होता है और वर्ष में प्रमुखतः दो बार तथा सामान्यतः नौ बार । मिठ्टी की छोटी-सी चौंतरिया उनका आसन होती है, जो एक बार निर्मित कर ली जाती है और हमेशा काम देती है । उस पर हाथ का कता-बुना फरका (खादी का टुकड़ा) रखा जाता है, जिस पर कुलदेवता का चित्र लिखा होता है । कुलदेवता अलग-अलग होते हैं, पर उनकी पूजा हर जनपद में होती है ।

इतिहास साक्षी है कि प्रसिद्ध इतिहासकार वी. ए. स्मिथ चन्देलों की कुलदेवी-मनियाँ देवी घोषित करते हैं । आरक्येल्यॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग सात में जे. डी. बैगलर की टिप्पणी है कि मनियागढ़ में एक छोटे-से सादा मंदिर के अवशेषों में हाथ में तलवार लिये हुए एक स्त्री की मूर्ति मिली थी, जो ब्राह्मणों की पार्वती तथा गोंड़ों की अश्लील नग्न स्त्री प्रतिमा का समन्वित रूप है । वह गोंड़ों

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

द्वारा पूजित देवी से अधिक भिन्न नहीं है (पृ. ४४) । स्मिथ का यह मत महोबा के मनियाँदेव के आधार पर बना है । असल में मनियागढ़, उसके मंदिर में प्राप्त प्रतिमा उसी के नाम पर मनियाँ देवी और महोबा के मदन सागर के किनारे स्थापित मनीयाँदेव में मनीयाँ नाम का संबंध बैठाया गया है, जबकि मनियागढ़ में प्राप्त देवी-मूर्ति को मनियाँ देवी क्यों कहा जाय । फिर मनियाँदेव को मनियाँदेवी कैसे माना जाय । परमाल रासो (१६वीं शती) एवं जगतराज कीर दिग्विजय (१७२२-२३ ई.) के प्रमाणों से सिद्ध है कि मनियाँदेव मणिभद्र यक्ष ही हैं, जो पारसमणि के स्वामी भी है ।-२०

खंगारों की कुलदेवी `गजानन माता' थीं, जिनकी मूर्ति गढ़कुण्डार में कुण्ड के पास प्रतिष्ठित की गयी थी । मूर्ति से वे सिंहवाहिनी दुर्गासिद्ध होती हैं । बुंदेलों की देवी विन्ध्यवासिनी थी, जिनकी मूर्तियाँ कई स्थानों में सुशोभित हैं । मेरे कुलदेव गोसाईं बाबू कहलाते हैं, परंतु फरके पर लिखी हैं- सप्त मातृकाएँ-रथ पर आसीन सात देवियाँ । इससे प्रतीत होता है कि बुंदेलखंड शक्तिपूजक रहा है । माँय-मैर की पूजा भी कुलदेवी की पूजा है ।

पुनरुत्थान काल

इस युग में इस जनपद पर आर्यसमाज का प्रभाव काफी रहा, जिससे कुछ लोकदेवताओं की पूजा में अन्तर आया । लोककवि ईसुरी की फागों में शारदा, रामसीता, हनुमान, राधाकृष्ण, गंगा को स्मरण किया गया है, जबकि रूपकुँवरि की रचना-`भजनमाला' में राधाकृष्ण और सीताराम के साथ-साथ शिव-गौरा, बालाजी (सूर्य) और बरम जू की भक्ति के भजन संगृहीत हैं । प्रकट है कि स्त्रियाँ लोकदेवताओं पर पूरी आस्था रखती थीं, जबकि पुरुष पूजा के अवसरों पर मनमाफिक सहयोग देता था । इसीलिए वर्ष भर के तीज-त्यौहारों और व्रतों पर लोकदेवताओं की पूजा का भार स्त्रियों पर आ पड़ा था । जहाँ तक सामूहिक पूजा का प्रश्न है, देवियों की पूजा अधिक प्रचलित थी । चेचक और हैजा रोगों के निवारण के लिए शीतला माता और मरई माता को पूजा जाता है । मैंने स्त्रियों के झुण्ड देवीगीत गाते हुए और देवी के मंदिर तक दंड भरते हुए देखे हैं । हैजा के समय देवी की गाड़ी निकलती है, जिसमें बकरे जुते रहते हैं । नौ दुर्गा के नौ दिन देवीगीतों का गायन सामूहिक रूप में होता है । दुर्गा का पूजन तो हमेशा होता रहा है और खेरमाई की परम्परा भी बहुत प्राचीन है । स्थानीय नदी को मातृवत् मानने का स्वभाव बहुत पुराना है । कभी-कभी कोई घटना किसी को देवी बना देती है । सागर जिले के गढ़पहरा गाँव में एक नटनी प्रेम के लिए अपनी बलि चढ़ा देती है, इसी आदर्श के कारण नटनी की पूजा होती है । नरसिंहपुर जिले के बोहानीगाँव में मिढ़ानी देवी की मान्यता है, क्योंकि वे अंधों और कोढ़ियों को चंगा कर देती हैं ।

पुरुष देवों में हनुमान, हरदौल, दूला देव, नागदेव, शिव आदि प्रमुख हैं । मिड़ोइया, घटोइया, मालबाबा, मंगतदेव, भैंसासुर, बाघदेव, गोंड़ बाबा, बुंदेला बाबा आदि अवसर पर ही उपयोगी सिद्ध होते हैं । हुलेरा, मटिया आदि त्रासक देव अब तक अज्ञात रहे हैं । गोंड़ बड़े देव या महादेव को पूजते हैं, लेकिन साथ ही अन्य देवों को भी पूरा सम्मान देते हैं ।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

आधुनिक काल

लोकदेवियों और लोकदेवों की पूजा आज भी होती है, परंतु अधिकतर औपचारिक रूप में ही । बस या रेल में विदा होकर जाती नववधू नदी-घाट के घटोइया का पूजन नारियल की बलि देकर करती है अथवा झालरवाले छोटे बच्चे के सिर से पूड़ी आदि उतारकर नदी में चढ़ाकर घटोइया को ही नैवेद्य लगाते हैं । इन क्रियाओं में यांत्रिकता-सी आ गयी है और उनका सही अर्थ विस्मृत हो गया है । वर्ष भर व्रतों और त्यौहारों पर कई देवों के चित्र लिखे जाते हैं, उनका पूजन होता है, लेकिन अधिकांश को नहीं मालूम कि क्या हो गया है, उसका क्या अर्थ है और उसे किस रूप में होना चाहिए । कुलदेवता के रूप में फरका पर लिखी सात पुतरियाँ पूजी जाती हैं, पर वे पुतरियाँ कौन हैं और उनकी क्या सार्थकता है ।

आलेखनों और थापों के प्रतीकार्थ भूल जाने पर सब कुछ अंधी खोज-सा हो जाता है । लोकदेवताओं के सम्यक् ज्ञान के लिए अध्ययन और खोज की आवश्यकता है । सूतिका-गृह में लिखी षष्ठी और नौरता में सबसे ऊपर या अलग बनाया गया दैत्य या भूत, दोनों त्रासक लोकदेवता हैं । अगर उन्हें अदेवता कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं है । लोकभय के मनोविज्ञान का शिकार होता है और ऐसे लोकदेवताओं को प्रसन्न रखता है । यह रहस्य तो लोकवार्ता का हर विद्वान् जानता है, क्योंकि इस कालखण्ड में लोकवार्ता के हर अंग को वैज्ञानिक दृष्टि से परखने का प्रयास किना गया है । लेकिन इस संदर्भ में मैं लोक को ही शक्तिपुंज मानता हूँ, वह शक्तिपुंज जिसने बच्चों को खानेवाली राक्षसी को बच्चों की रक्षिका बना दिया और कन्याओं का अपहरण करने वाले दैत्य को कन्याओं के शुभचिंतक के रूप में बदल दिया । वस्तुतः लोक अद्‌भुत है, वह कालचेतना के अनुसार अपने सारे सम्भार को बदल देता है । अतएव इस वैज्ञानिक युग में लोकदेवताओं की क्रियाशीलता और उनके अर्थ की गत्यात्मकता आस्था का ठोस आधार खड़ा करेगी । यहीइ स युग की उपलब्धि है ।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.